CHAPTER बाईस

बलि महाराज द्वारा आत्मसमर्पण

इस अध्याय का सारांश इस प्रकार है—बलि महाराज के आचरण से भगवान् प्रसन्न हुए। अतएव उन्होंने उन्हें सुतललोक में भेज दिया और वहाँ उन्हें वर देकर स्वयं उनका द्वारपाल बनना स्वीकार कर लिया। बलि महाराज अत्यन्त सत्यवादी थे। अपना वचन पूरा न कर सकने के कारण वे अत्यन्त भयभीत थे क्योंकि वे जानते थे कि जो अपने सत्य से डिग जाता है, वह समाज की आँखों से गिर जाता है। एक सम्मानित व्यक्ति नारकीय जीवन का कष्ट भोग सकता है लेकिन वह सत्य के मार्ग से विपथ होकर बदनाम होने से अत्यन्त भयभीत रहता है। बलि महाराज ने भगवान् द्वारा दिये गये दण्ड को सहर्ष स्वीकार कर लिया। बलि महाराज के वंश में ऐसे अनेक *असुर* हो चुके थे जिन्होंने विष्णु से शत्रुता रखने के कारण अनेक योगियों से भी उच्च स्थान प्राप्त किया था। बलि महाराज को विशेष रूप से प्रह्लाद महाराज की भक्ति-निष्ठा का स्मरण था। इन सब बातों पर विचार करते हुए उन्होंने विष्णु के तीसरे पग के लिए अपना सिर दान में देने का निर्णय लिया। उन्होंने इस पर भी विचार किया कि भगवान् को प्रसन्न करने के लिए किस प्रकार महापुरुष अपने पारिवारिक सम्बन्ध तथा भौतिक सम्पत्ति को छोड़ देते हैं। निस्सन्देह, वे कभी-कभी भगवान् को तुष्ट करने तथा मात्र उनके निजी सेवक बनने के लिए अपने प्राणों तक का उत्सर्ग कर देते हैं। इस तरह पूर्ववर्ती आचार्यों एवं भक्तों का अनुसरण करते हुए बलि महाराज ने अपने आपको कृतकृत्य अनुभव किया।

जब वरुणपाश द्वारा बन्दी बनाये गये बलि महाराज भगवान् की स्तुति कर रहे थे तो उनके पितामह प्रह्लाद महाराज वहाँ प्रकट हुए और उन्होंने बतलाया कि किस तरह भगवान् ने छल से बलि महाराज की सारी सम्पत्ति लेकर उनका उद्धार किया है। उनकी उपस्थिति में ही ब्रह्माजी तथा बलि की पत्नी विन्ध्यावलि ने भगवान् की श्रेष्ठता का वर्णन किया। चूँकि बलि महाराज ने भगवान् को दान में सर्वस्व दे दिया था अतएव उन सबने उनके छोड़े जाने के लिए विनती की। तब भगवान् ने बताया कि अभक्त के पास सम्पत्ति का होना कितना घातक है जब कि भक्त का ऐश्वर्य भगवान् का वरदान होता है। तत्पश्चात् बलि महाराज से प्रसन्न होकर भगवान् ने उन्हें रक्षा के लिए अपना चक्र दिया और उनके साथ रहने का वचन दे दिया।

श्रीशुक उवाच
एवं विप्रकृतो राजन्बलिर्भगवतासुरः ।
भिद्यमानोऽप्यभिन्नात्मा प्रत्याहाविक्लवं वचः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार, जैसाकि पहले कहा जा चुका है; विप्रकृतः—संकट में पड़कर; राजन्—हे राजा; बलिः—बलि महाराज ने; भगवता—भगवान् वामनदेव द्वारा; असुरः—असुरराज; भिद्यमानः अपि—इस कष्टदायक स्थिति में रहकर भी; अभिन्न-आत्मा—शरीर या मन से विचलित हुए बिना; प्रत्याह—उत्तर दिया; अविक्लवम्—अविचल भाव से; वचः—निम्नलिखित शब्द।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा! यद्यपि ऊपर से ऐसा लग रहा था कि भगवान् ने बलि महाराज के साथ दुर्व्यवहार किया है, किन्तु बलि महाराज अपने संकल्प पर अडिग थे। यह सोचते हुए कि मैंने अपना वचन पूरा नहीं किया है, वे इस प्रकार बोले।

श्रीबलिरुवाच
यद्युत्तमश्लोक भवान्ममेरितं
वचो व्यलीकं सुरवर्य मन्यते ।
करोम्यृतं तन्न भवेत्प्रलम्भनं
पदं तृतीयं कुरु शीर्ष्णि मे निजम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-बलिः उवाच—बलि महाराज ने कहा; यदि—यदि; उत्तमश्लोक—हे परमेश्वर; भवान्—आप; मम—मेरा; ईरितम्—वादा किया गया; वचः—वचन, शब्द; व्यलीकम्—झूठे; सुर-वर्य—हे सुरों (देवताओं) में महानतम; मन्यते—ऐसा सोचते हों; करोमि—करूँगा; ऋतम्—सत्य; तत्—वह (वादा); न—नहीं; भवेत्—होगा; प्रलम्भनम्—धोखा; पदम्—पग; तृतीयम्—तीसरा; कुरु—करें; शीर्ष्णि—सिर पर; मे—मेरे; निजम्—अपने चरणकमलों को।

बलि महाराज ने कहा : हे परमेश्वर, हे सभी देवताओं के परम पूज्य! यदि आप सोचते हैं कि मेरा वचन झूठा हो गया है, तो मैं उसे सत्य बनाने के लिए अवश्य ही भूल सुधार दूँगा। मैं अपने वचन को झूठा नहीं होने दे सकता। अतएव आप कृपा करके अपना तीसरा कमलरूपी पग मेरे सिर पर रखें।

तात्पर्य : बलि महाराज भगवान् वामनदेव की चाल समझ गये थे कि वे देवताओं के पक्षधर भिक्षुक बनकर उनके समक्ष आये थे। यद्यपि भगवान् का उद्देश्य बलि को ठगना था, किन्तु बलि को आनन्द आ रहा था कि भगवान् किस प्रकार अपने भक्त को ठगकर उसको महिमा प्रदान कर रहे हैं। कहा जाता है कि भगवान् बड़े अच्छे हैं और यह सच है। वे चाहे ठगें या पुरस्कृत करें, वे सदैव अच्छे हैं। इसीलिए बलि महाराज ने उन्हें उत्तमश्लोक कहकर सम्बोधित किया। उन्होंने कहा ''आपकी प्रशंसा सदा उत्तम श्लोकों से की जाती है। आपने देवताओं की ओर से अपना यह कहकर मुझे ठगने

के लिए वेश बदला कि आपको केवल तीन पग भूमि चाहिए, किन्तु बाद में आपने अपना शरीर इस हद तक विस्तारित कर लिया कि आपने अपने दो ही पगों में सारा ब्रह्माण्ड घेर लिया। चूँकि आप अपने भक्तों की ओर से काम कर रहे थे अतएव आप इसे ठगी नहीं मानते है। कोई बात नहीं। मैं भक्त नहीं माना जा सकता। फिर भी चूँकि आप लक्ष्मीपति होकर भी मेरे पास दान माँगने आये हैं अतएव मुझे यथाशक्ति आपको सन्तुष्ट करना चाहिए। अतएव आप यह न सोचें कि मैं आपको ठगना चाहता था; मुझे तो अपना वचन पूरा करना ही होगा। अब भी मेरे पास एक सम्पत्ति बची है—वह है मेरा शरीर। आपने मेरी सम्पत्ति तो ले ली, किन्तु मेरे पास अपना शरीर अब भी बचा है। अब आपकी तुष्टि के लिए मैं अपना शरीर दे रहा हूँ तो आप अपना तीसरा पग मेरे सिर पर रख लें?'' कोई यह पूछ सकता है कि जब भगवान् ने दो ही पगों में पूरा ब्रह्माण्ड घेर लिया तो भला उनके तीसरे पग के लिए बलि महाराज का सिर कैसे पर्याप्त हो सकता था? किन्तु बलि महाराज ने सोचा कि सम्पत्ति की अपेक्षा सम्पत्ति के अधिकारी को बड़ा होना चाहिए। इसलिए यद्यपि भगवान् ने उनकी सारी सम्पत्ति ले ली थी तो भी सम्पत्ति के अधिकारी बलि महाराज का सिर भगवान् के तीसरे पग के लिए पर्याप्त स्थान प्रदान कर सकेगा।

बिभेमि नाहं निरयात्पदच्युतो
न पाशबन्धाद्व्यसनाद्दुरत्ययात् ।
नैवार्थकृच्छ्राद्भवतो विनिग्रहा-
दसाधुवादाद्भृशमुद्विजे यथा ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

बिभेमि—डरता हूँ; न—नहीं; अहम्—मैं; निरयात्—नरक जाने से; पद-च्युतः—न ही अपने स्थान से नीचे गिरने से डरता हूँ; न—न तो; पाश-बन्धात्—वरुण के पाश द्वारा बाँधे जाने से; व्यसनात्—कष्ट से; दुरत्ययात्—असह्य; न—न तो; एव—निश्चय ही; अर्थ-कृच्छ्रात्—गरीबी से, धनाभाव से; भवतः—आप; विनिग्रहात्—उस दंड से जिसे अब मैं भोग रहा हूँ; असाधु-वादात्—अपयश से; भृशम्—अत्यधिक; उद्विजे—चिन्तित हूँ; यथा—जिस तरह।

मैं अपनी सारी सम्पत्ति से वंचित होने, नारकीय जीवन बिताने, गरीबी के लिए वरुणपाश द्वारा बाँधे जाने या आपके द्वारा दण्डित होने से उतना भयभीत नहीं होता हूँ जितना कि मैं अपनी अपकीर्ति से डरता हूँ।

तात्पर्य : यद्यपि बलि महाराज ने भगवान् को पूर्ण आत्म-समर्पण कर दिया था, किन्तु वे ब्राह्मण-ब्रह्मचारी को ठगने के लिए बदनाम होना नहीं सह सकते थे। अपने यश के विषय में पूरी तरह सतर्क

रहने के कारण उन्होंने गम्भीरतापूर्वक सोचा कि बदनामी से कैसे बचा जाये। अतएव भगवान् ने उन्हें अपनी बदनामी को रोकने के लिए अच्छी सलाह दी कि वे अपना सिर अर्पित कर दें। वैष्णव कभी किसी दण्ड से डरता नहीं। *नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति* (*भागवत* ६.१७.२८)।

पुंसां श्लाघ्यतमं मन्ये दण्डमर्हत्तमार्पितम् ।
यं न माता पिता भ्राता सुहृदश्चादिशन्ति हि ॥ ४॥

शब्दार्थ

पुंसाम्—मनुष्यों का; श्लाघ्य-तमम्—अत्यन्त प्रशंसनीय; मन्ये—मानता हूँ; दण्डम्—दण्ड को; अर्हत्तम-अर्पितम्—परम आराध्य आपके द्वारा दिये गये; यम्—जो; न—न तो; माता—माता; पिता—पिता; भ्राता—भाई; सुहृदः—मित्रगण; च—भी; आदिशन्ति—अर्पित करते हैं; हि—निस्सन्देह।

यद्यपि कभी-कभी किसी व्यक्ति के पिता, माता, भाई या मित्र उसके हितैषी होने के कारण उसे दण्डित कर सकते हैं, किन्तु वे कभी भी अपने आश्रित को इस प्रकार दण्डित नहीं करते। किन्तु आप परम पूज्य भगवान् हैं अतएव आपने मुझे जो दण्ड दिया है उसे मैं अत्यन्त प्रशंसनीय समझता हूँ।

तात्पर्य : भगवान् द्वारा दिया गया दण्ड भक्त के द्वारा परम कृपा के रूप में स्वीकार किया जाता है—

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो
भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन् नमस्ते जीवेत
यो मुक्तिपदे स दायभाक्॥

''जो आपकी कृपा चाहता है और फलस्वरूप अपने विगत कर्मों के कारण सभी प्रकार की विषम परिस्थितियों को सहता है, जो तन, मन तथा वाणी से सदैव आपकी भक्ति में लगा रहता है और आपको सदैव नमस्कार करता है, वह निश्चित रूप से मुक्ति का योग्य पात्र है।'' (*भागवत* १०.१४.८)। भक्त जानता है कि भगवान् द्वारा दिया गया तथाकथित दण्ड अपने भक्त को सुधारने तथा सन्मार्ग पर लाने का उनका एकमात्र अनुग्रह है। अतएव भगवान् द्वारा दिये गये दण्ड की तुलना अपने पिता, माता, भाई या मित्र द्वारा दिये गये बड़े से बड़े लाभ से भी नहीं की जा सकती।

त्वं नूनमसुराणां नः परोक्षः परमो गुरुः ।
यो नोऽनेकमदान्धानां विभ्रंशं चक्षुरादिशत् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; नूनम्—निस्सन्देह; असुराणाम्—असुरों का; नः—हम जिस तरह हैं; परोक्षः—अप्रत्यक्ष; परमः—परम; गुरुः—गुरु; यः—जो (आप); नः—हमारा; अनेक—कई; मद-अन्धानाम्—भौतिक ऐश्वर्य से अन्धा बना; विभ्रंशम्—हमारी मिथ्या प्रतिष्ठा को विनष्ट करके; चक्षुः—ज्ञान का नेत्र; आदिशत्—दिया।

चूँकि आप हम असुरों के अप्रत्यक्ष रूप से महानतम शुभचिन्तक हैं, आप हमारे शत्रु का वेश धारण करके भी हमारे सर्वोच्च कल्याण के लिए कर्म करते हैं। चूँकि हम-जैसे असुर सदैव मिथ्या प्रतिष्ठा का पद पाने की महत्त्वाकांक्षा करते हैं, अतएव आप हमें दण्डित करके हमारे ज्ञान-नेत्र खोलते हैं जिनसे हम सन्मार्ग देख सकें।

तात्पर्य : बलि महाराज ने भगवान् को देवताओं की अपेक्षा असुरों का मित्र अधिक समझा। इस भौतिक जगत में जिसे जितना ही अधिक धन मिलता है, वह उतना ही अधिक आध्यात्मिक जीवन के प्रति अन्धा बन जाता है। देवतागण भौतिक सम्पत्ति के लिए भगवान् के भक्त हैं किन्तु यद्यपि भगवान् प्रत्यक्ष रूप से असुरों के पक्ष में नहीं रहते फिर-भी वे उन्हें मिथ्या-प्रतिष्ठा के पदों से वंचित करके उनके शुभचिन्तक के रूप में कार्य करते हैं। चूँकि मिथ्या प्रतिष्ठा से लोग दिग्भ्रमित हो जाते हैं इसलिए भगवान् उन पर विशेष कृपा करके उनकी मिथ्या-प्रतिष्ठा को हर लेते हैं।

यस्मिन्वैरानुबन्धेन व्यूढेन विबुधेतराः ।
बहवो लेभिरे सिद्धिं यामु हैकान्तयोगिनः ॥ ६ ॥
तेनाहं निगृहीतोऽस्मि भवता भूरिकर्मणा ।
बद्धश्च वारुणैः पाशैर्नातिव्रीडे न च व्यथे ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

यस्मिन्—जिसको; वैर-अनुबन्धेन—लगातार शत्रु-जैसा व्यवहार करके; व्यूढेन—ऐसी बुद्धि द्वारा स्थिर; विबुध-इतराः—असुर (देवताओं से भिन्न); बहवः—उनमें से अनेक ने; लेभिरे—प्राप्त की; सिद्धिम्—सिद्धि; याम्—जिसको; उ ह—यह भलीभाँति ज्ञात है; एकान्त-योगिनः—अत्यन्त सफल योगियों की उपलब्धियों के तुल्य; तेन—अतएव; अहम्—मैं; निगृहीतः अस्मि—यद्यपि मैं दण्डित हो रहा हूँ; भवता—आपके द्वारा; भूरि-कर्मणा—अद्भुत कर्म करने वाला; बद्धः च—मैं बन्दी हूँ; वारुणैः पाशैः—वरुण के पाश द्वारा; न अति-व्रीडे—मैं इससे तनिक भी लज्जित नहीं हूँ; न च व्यथे—न ही मुझे अधिक कष्ट है।

आपसे लगातार शत्रुता रखने वाले अनेक असुरों ने अन्ततः महान् योगियों की सिद्धि प्राप्त की। आप एक ही कार्य से अनेक उद्देश्यों की पूर्ति कर सकते हैं; फलस्वरूप यद्यपि आपने मुझे अनेक प्रकार से दण्डित किया है फिर भी मुझे वरुणपाश से बंदी बनाये जाने की न तो लज्जा है न ही मैं कोई कष्ट अनुभव कर रहा हूँ।

तात्पर्य : बलि महाराज ने न केवल अपने ऊपर भगवान् की कृपा की प्रशंसा की अपितु अनेक अन्य असुरों के प्रति की गई कृपा को भी सराहा। चूँकि यह कृपा उदारतापूर्वक वितरित की जाती है इसलिए परमेश्वर सर्वकृपालु कहलाते हैं। बलि महाराज तो निस्सन्देह, पूर्णतया शरणागत भक्त थे, किन्तु कुछ ऐसे असुरों ने जो रंचमात्र भी भक्त नहीं थे अपितु भगवान् के शत्रु मात्र थे वही उच्च स्थान प्राप्त किया जो अनेक योगियों ने प्राप्त किया था। इस तरह बलि महाराज की समझ में यह आया कि उन्हें दण्डित करने में भगवान् का कोई गुप्त मन्तव्य था। फलस्वरूप वे भगवान् द्वारा जिस विषम स्थिति में डाल दिये गये थे उससे वे न तो दुखी थे, न ही लज्जित।

पितामहो मे भवदीयसम्मतः
प्रह्लाद आविष्कृतसाधुवादः ।
भवद्विपक्षेण विचित्रवैशसं
सम्प्रापितस्त्वं परमः स्वपित्रा ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

पितामहः—बाबा; मे—मेरे; भवदीय-सम्मतः—आपके भक्तों द्वारा मान्य; प्रह्लादः—प्रह्लाद महाराज; आविष्कृत-साधु-वादः—सर्वत्र भक्त के रूप में प्रसिद्ध; भवत्-विपक्षेण—आपके विरुद्ध होने मात्र से ही; विचित्र-वैशसम्—विभिन्न प्रकार से उत्पीड़न करते हुए; सम्प्रापितः—कष्ट उठाया; त्वम्—तुमने; परमः—परम आश्रय; स्व-पित्रा—अपने ही पिता द्वारा।

मेरे बाबा प्रह्लाद महाराज आपके सारे भक्तों द्वारा मान्य होकर प्रसिद्ध हैं। यद्यपि उनके पिता हिरण्यकशिपु ने उन्हें अनेक प्रकार से कष्ट दिए थे, फिर भी वे आपके चरणकमलों का आश्रय लेकर आज्ञाकारी बने रहे।

तात्पर्य : प्रह्लाद महाराज जैसा शुद्ध भक्त परिस्थितिवश अनेक प्रकार की यातनाएँ दिये जाने पर भी कभी भी भगवान् की शरण छोड़कर अन्य किसी की शरण ग्रहण नहीं करता। शुद्ध भक्त कभी भी भगवान् की कृपा के विरुद्ध शिकायत नहीं करता। इसके ज्वलन्त उदाहरण प्रह्लाद महाराज हैं। यदि हम उनके जीवन का अवलोकन करें तो हम देख सकते हैं कि यद्यपि उनके अपने ही पिता हिरण्यकशिपु ने उन्हें बहुत कठोर कष्ट दिए थे तो भी वे भगवान् के ध्यान से तनिक भी विचलित नहीं हुए। बलि महाराज अपने पितामह प्रह्लाद महाराज के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए भगवान् द्वारा दण्ड दिए जाने के बावजूद भी भगवद्भक्ति में अचल रहे।

किमात्मनानेन जहाति योऽन्ततः
किं रिक्थहारैः स्वजनाख्यदस्युभिः ।
किं जायया संसृतिहेतुभूतया
मर्त्यस्य गेहैः किमिहायुषो व्ययः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या लाभ; आत्मना अनेन—इस शरीर से; जहाति—त्याग देता है; यः—जो (शरीर); अन्ततः—जीवन के अन्त में; किम्—क्या लाभ; रिक्थ-हारैः—धन के लुटेरों से; स्वजन-आख्य-दस्युभिः—जो स्वजनों के नाम से वास्तव में लुटेरे हैं; किम्—क्या लाभ; जायया—पत्नी से; संसृति-हेतु-भूतया—जो भौतिक दशाओं की वृद्धि की स्रोत है; मर्त्यस्य—मरणशील व्यक्ति का; गेहैः—घर, परिवार तथा जाति से; किम्—क्या लाभ; इह—जिस घर में; आयुषः—जीवन का; व्ययः—मात्र विनाश।

उस भौतिक शरीर से क्या लाभ जो जीवन के अन्त में अपने स्वामी को स्वतः छोड़ देता है? और परिवार के उन सभी सदस्यों से क्या लाभ जो वास्तव में उस धन का अपहरण कर लेते हैं, जो दिव्य ऐश्वर्य के लिए भगवान् की सेवा में उपयोगी हो सकता है? उस पत्नी से भी क्या लाभ जो भौतिक दशाओं को बढ़ाने की स्त्रोत मात्र है। उस परिवार, घर, देश तथा जाति से भी क्या लाभ जिसमें आसक्त होने से सारे जीवन की मूल्यवान शक्ति का मात्र अपव्यय होता है।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण उपदेश देते हैं—*सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज*—सारे धर्मों को छोड़कर केवल मेरी शरण में आओ। सामान्य व्यक्ति भगवान् के ऐसे कथन को महत्त्व नहीं देता क्योंकि वह सोचता है कि उसके जीवन काल में उसका परिवार, समाज, देश, शरीर तथा कुटुम्बी ही सब कुछ हैं। भला इन्हें छोड़कर कोई भगवान् की शरण क्यों ले? किन्तु प्रह्लाद महाराज तथा बलि महाराज जैसे महापुरुषों के आचरण से हम यह समझते हैं कि एक बुद्धिमान् व्यक्ति के लिए भगवान् की शरण में जाना सही कर्म है। प्रह्लाद महाराज ने अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध विष्णु की शरण ली। इसी प्रकार बलि महाराज ने अपने गुरु शुक्राचार्य तथा अन्य सभी प्रमुख असुरों की इच्छा के विरूद्ध वामनदेव की शरण ली। लोगों को आश्चर्य हो सकता है कि प्रह्लाद महाराज तथा बलि महाराज ने अपने परिवार, तथा घर-बार के सहज आकर्षण को त्यागकर अपने शत्रु के पक्ष की शरण ग्रहण क्यों की? इस प्रसंग में बलि महाराज बतलाते हैं कि यह शरीर भी जो कि समस्त भौतिक कार्यकलापों का केन्द्रबिन्दु है, एक बाह्य तत्त्व है। यद्यपि हम शरीर को स्वस्थ एवं अपने कार्यकलापों में सहायक बनाये रखना चाहते हैं, किन्तु शरीर सदा काम नहीं कर सकता। यद्यपि मैं आत्मा हूँ, जो कि नित्य है, किन्तु इस शरीर को कुछ काल तक उपयोग में लाने के बाद मुझे प्रकृति के नियमानुसार दूसरा शरीर ग्रहण

करना पड़ता है (*तथा देहान्तर-प्राप्ति:*) यदि मैं इस शरीर से भक्ति में उन्नति के लिए कुछ सेवाकार्य न करूं। मनुष्य को जानना चाहिए कि यदि वह शरीर का उपयोग किसी अन्य कार्य के लिए करता है, तो वह यह समय का अपव्यय करता है क्योंकि जब समय आ जायेगा तो आत्मा स्वयमेव शरीर को छोड़ देगा।

हम समाज, मित्रता तथा प्रेम में अत्यधिक रुचि दिखलाते हैं, किन्तु ये हैं क्या? मित्र तथा कुटुम्बियों के वेश में वे लोग मोहग्रस्त जीव के परिश्रमपूर्वक अर्जित धन को मात्र लूटते रहते हैं। हर व्यक्ति अपनी पत्नी के प्रति आसक्त रहता है और वह उसे प्रिय होती है लेकिन यह पत्नी है क्या? पत्नी स्त्री कहलाती है, जिसका अर्थ है ''भौतिकता का विस्तार करने वाली।'' जो व्यक्ति पत्नी के बिना जीवन बिताता है उसकी भौतिक अवस्थाएँ कम विस्तृत होती हैं। ज्योंही मनुष्य विवाह करके पत्नी से सम्बन्ध जोड़ता है, त्योंही उसकी भौतिक आवश्यकताऐ बढ़ जाती हैं।

पुंस: स्त्रिया मिथुनीभावमेतं

तयोर्मिथो हृदयग्रंथिमाहु: ।

अतो गृहक्षेत्रसुताप्तवित्तै

र्जनस्य मोहोऽयमहं ममेति॥

''इस भौतिक संसार का मूल सिद्धान्त नर तथा नारी के मध्य आर्कषण है। इस भ्रान्त धारणा से जिससे नर तथा नारी के हृदय बँधते हैं मनुष्य अपने शरीर, घर, सम्पत्ति, सन्तान, कुटुम्बी तथा धन के प्रति आकृष्ट हो जाता है। इस प्रकार जीवन का मोह बढ़ता जाता है और जीव ''मैं तथा मेरे'' के रूप में सोचने लगता है। (*भागवत* ५.५.८)। मनुष्य जीवन तो आत्म-साक्षात्कार के लिए है—अवांछित वस्तुओं की वृद्धि के लिए नहीं। वस्तुत: पत्नी अवांछित वस्तुओं को बढ़ाती है। मनुष्य का जीवनकाल, उसका घर, उसके पास की प्रत्येक वस्तु, यदि वे भगवान् की सेवा में उचित ढंग से नहीं लगाई जातीं तो वे तीन प्रकार के कष्टों (आध्यात्मिक, अधिभौतिक तथा अधिदैविक) के लिए स्थायी दुखदायक भौतिक अवस्थाएँ उत्पन्न करने वाली बनती हैं। दुर्भाग्यवश समाज में इस विषय पर शिक्षा देने वाली कोई संस्था नहीं है। लोगों को जीवन उद्देश्य के विषय में अंधकार में रखा जाता है, जिससे निरन्तर जीवन-संघर्ष चलता रहता है। हम ''योग्यतम की उत्तरजीविता'' की बात करते हैं किन्तु इससे कोई

बचता नहीं क्योंकि इस भौतिक अवस्थाओं से कोई भी स्वतंत्र नहीं है।

इत्थं स निश्चित्य पितामहो महा-
नगाधबोधो भवतः पादपद्मम् ।
ध्रुवं प्रपेदे ह्यकुतोभयं जनाद्
भीतः स्वपक्षक्षपणस्य सत्तम ॥ १० ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इसके कारण; सः—वे प्रह्लाद महाराज; निश्चित्य—इस बात को निश्चित करके; पितामहः—मेरे बाबा; महान्—महान् भक्त; अगाध-बोधः—मेरे पितामह जिन्होंने अपनी भक्ति के द्वारा असीम ज्ञान प्राप्त किया; भवतः—आपके; पाद-पद्मम्—चरणकमल की; ध्रुवम्—अच्युत नित्य आश्रय; प्रपेदे—शरण ग्रहण की; हि—निस्सन्देह; अकुतः-भयम्—पूर्णतया निर्भय; जनात्—सामान्यजनों से; भीतः—डरकर; स्वपक्ष-क्षपणस्य—आपका, जो हमारे पक्ष के असुरों का वध करते हैं; सत्-तम—हे श्रेष्ठों में श्रेष्ठ।

मेरे पितामह जो सभी मनुष्यों में श्रेष्ठ थे और जिन्होंने असीम ज्ञान प्राप्त किया था और जो हर एक द्वारा पूज्य थे, इस जगत के सामान्य लोगों से भयभीत रहते थे। आपके चरणकमलों में प्राप्त होने वाले आश्रय को पूर्णतया समझकर ही उन्होंने आपके द्वारा मारे गये अपने पिता तथा अपने असुर मित्रों की इच्छा के विरुद्ध आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण की थी।

अथाहमप्यात्मरिपोस्तवान्तिकं
दैवेन नीतः प्रसभं त्याजितश्रीः ।
इदं कृतान्तान्तिकवर्ति जीवितं
ययाध्रुवं स्तब्धमतिर्न बुध्यते ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

अथ—इसलिए; अहम्—मैं; अपि—भी; आत्म-रिपोः—परिवार के परम्परागत शत्रु का; तव—तुम्हारे; अन्तिकम्—आश्रय; दैवेन—विधिवश; नीतः—लाया गया; प्रसभम्—बलपूर्वक; त्याजित—विहीन; श्रीः—सारे ऐश्वर्य से; इदम्—जीवन का यह दर्शन; कृत-अन्त-अन्तिक-वर्ति—मृत्यु की सुविधा प्राप्त; जीवितम्—आयु; यया—ऐसे ऐश्वर्य से; अध्रुवम्—क्षणिक; स्तब्ध-मतिः—ऐसा मूर्ख व्यक्ति; न बुध्यते—समझ नहीं सकता।

मैं तो दैववश ही मजबूर होकर आपके चरणों में लाया गया हूँ और अपने समस्त ऐश्वर्य से विहीन हो गया हूँ। सामान्य संसारी लोग भौतिक स्थितियों में रहते हुए नश्वर ऐश्वर्य द्वारा उत्पन्न मोह के कारण पग पग पर आकस्मिक मृत्यु का सामना करते हुए भी नहीं समझ पाते कि यह जीवन नश्वर है। मैं तो दैववश ही उस स्थिति से बच गया हूँ।

तात्पर्य : बलि महाराज ने भगवान् के कामों की सराहना की यद्यपि प्रह्लाद महाराज तथा बलि महाराज के अतिरिक्त, असुर परिवारों के सारे सदस्य विष्णु को अपना नित्य पारम्परिक शत्रु मानते थे।

जैसाकि बलि महाराज ने वर्णन किया है, वास्तव में भगवान् विष्णु उनके परिवार के शत्रु नहीं अपितु सर्वोत्तम मित्र थे। इस मैत्री का सिद्धान्त पहले ही बतलाया जा चुका है। *यस्याहम् अनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनै*—भगवान् अपने भक्त का सारा भौतिक ऐश्वर्य छीनकर उस पर विशेष कृपा करते हैं। बलि महाराज ने भगवान् के इस व्यवहार की सराहना की। इसीलिए उन्होंने कहा—*दैवेन नीतः प्रसभं त्याजितश्रीः*—आपने शाश्वत जीवन के सही पद पर लाने के उद्देश्य से ही मुझे इस परिस्थिति में डाल दिया है।

वस्तुत: हर एक मनुष्य को चाहिए कि वह तथाकथित समाज, मैत्री तथा प्रेम से डरे जिनके लिए वह अहर्निश श्रम करता रहता है। जैसाकि बलि महाराज है *जनाद् भीतः*, शब्दों के द्वारा संकेत किया है, प्रत्येक कृष्णभावनाभावित भक्त को सामान्य मनुष्य से भयभीत रहना चाहिए जो भौतिक सम्पत्ति के पीछे भागता रहता है। ऐसा व्यक्ति *प्रमत्त* या पागल कहलाता है, जो मायाजाल का पीछा करता रहता है। ऐसे व्यक्ति यह नहीं जानते कि कठिन जीवन-संघर्ष के बाद मनुष्य को शरीर बदलना पड़ता है और इसकी कोई गारंटी नहीं है कि अगला शरीर किस तरह का होगा। जो पूर्णरूपेण कृष्णभावनाभावित हैं और जीवन के लक्ष्य को समझते हैं, वे कभी भी भौतिक कार्यकलापों की घुड़दौ में नहीं पड़ते। किन्तु यदि कोई निष्ठावान् भक्त किसी तरह च्युत हो ही जाता है, तो भगवान् उसे सुधार लेते हैं और नारकीय जीवन के घोरतम अंधकार में गिरने से बचा लेते हैं।

अदान्तगोभिर्विशतां तमिस्रं
पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम्

(*भागवत* ७.५.३०)

भौतिक जीवनशैली आखिर है क्या मात्र चबाये हुए को बारम्बार चबाना। यद्यपि ऐसे जीवन से कोई लाभ नहीं मिलता, किन्तु लोग असंयमित इन्द्रियों के कारण उसकी ओर आकृष्ट होते हैं। *नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म।* असंयमित इन्द्रियों के कारण लोग पापकर्मों में पूरी तरह लग जाते हैं जिनसे कष्टदायक शरीर प्राप्त होता है। बलि महाराज सराह रहे थे कि भगवान् ने किस तरह उन्हें ऐसे अज्ञान के मोहग्रस्त जीवन से बचा लिया है। इसलिए उन्होंने कहा कि उनकी बुद्धि चकरा गई थी। *स्तब्धमतिर्न बुध्यते।* वे समझ ही नहीं सके कि भगवान् किस प्रकार भक्तों के भौतिकतावादी कार्यकलापों को

जबरन रोककर उन पर कृपा करते हैं।

श्रीशुक उवाच
तस्येत्थं भाषमाणस्य प्रह्लादो भगवत्प्रियः ।
आजगाम कुरुश्रेष्ठ राकापतिरिवोत्थितः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; तस्य—बलि महाराज का; इत्थम्—इस प्रकार; भाषमाणस्य—अपनी भाग्यशाली स्थिति का वर्णन करते हुए; प्रह्लादः—महाराज प्रह्लाद; भगवत्-प्रियः—भगवान् के सर्वाधिक प्रिय भक्त; आजगाम—वहाँ प्रकट हुए; कुरु-श्रेष्ठ—हे कुरुओं में श्रेष्ठ महाराज परीक्षित; राका-पतिः—चन्द्रमा; इव—सदृश; उत्थितः—उदित हुए।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे कुरुश्रेष्ठ! जब बलि महाराज इस प्रकार अपने भाग्य की प्रशंसा कर रहे थे तो भगवान् के परम प्रिय भक्त प्रह्लाद महाराज वहाँ प्रकट हुए मानो रात्रि में चन्द्रमा उदय हो गया हो।

तमिन्द्रसेनः स्वपितामहं श्रिया
विराजमानं नलिनायतेक्षणम् ।
प्रांशुं पिशङ्गाम्बरमञ्जनत्विषं
प्रलम्बबाहुं शुभगर्षभमैक्षत ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

तम्—उन प्रह्लाद महाराज को; इन्द्र-सेनः—बलि महाराज जिनके पास इन्द्र की सारी सेना थी; स्व-पितामहम्—अपने पितामह को; श्रिया—सारे सुन्दर अंगों से युक्त उपस्थित; विराजमानम्—वहाँ पर खड़े; नलिन-आयत-ईक्षणम्—कमल की पंखड़ियों जितनी चौड़ी आँखों से; प्रांशुम्—अत्यन्त सुन्दर शरीर को; पिशङ्ग-अम्बरम्—पीत वस्त्र धारण किये; अञ्जन-त्विषम्—आँखों के अंजन सदृश शरीर से; प्रलम्ब-बाहुम्—अत्यन्त लम्बी भुजाएँ; शुभग-ऋषभम्—सर्वश्रेष्ठ शुभ पुरुष; ऐक्षत—देखा।

तब बलि महाराज ने परम भाग्यशाली व्यक्ति अपने पितामह प्रह्लाद महाराज को देखा जिनका श्यामल शरीर आँखों के अंजन जैसा लग रहा था। उनका लम्बा, भव्य शरीर पीताम्बर धारण किये था, उनकी भुजाएँ लम्बी थीं और उनकी सुन्दर आँखें कमल की पंखड़ियों के समान थीं। वे सबके अत्यन्त प्रिय तथा मोहक थे।

तस्मै बलिर्वारुणपाशयन्त्रितः
समर्हणं नोपजहार पूर्ववत् ।
ननाम मूर्ध्नाश्रुविलोललोचनः
सव्रीडनीचीनमुखो बभूव ह ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तस्मै—प्रह्लाद महाराज को; बलिः—बलि महाराज ने; वारुण-पाश-यन्त्रितः—वरुणपाश द्वारा बाँधा गया; समर्हणम्—उपयुक्त सम्मान; न—नहीं; उपजहार—प्रदान किया; पूर्व-वत्—पहले की तरह; ननाम—प्रणाम किया; मूर्ध्ना—सिर के बल; अश्रु-विलोल-लोचनः—अश्रुपूरित नेत्र; स-व्रीड—लज्जा सहित; नीचीन—नीचा; मुखः—मुख; बभूव ह—हो गया।

वरुणपाश से बँधे होने के कारण बलि महाराज पहले की तरह प्रह्लाद महाराज को भलीभाँति सम्मान नहीं दे पाये। उन्होंने केवल सिर के द्वारा प्रणाम किया, उनके नेत्र अश्रुपूरित थे और लज्जा से उनका सिर नीचा था।

तात्पर्य : चूँकि बलि महाराज को भगवान् वामनदेव ने बन्दी बना लिया हुआ था अतएव वे निस्सन्देह, अपराधी माने जाने के योग्य थे और बलि महाराज गम्भीरतापूर्वक अनुभव भी कर रहे थे कि वे भगवान् के अपराधी हैं। प्रह्लाद महाराज को निश्चित रूप से यह अच्छा नहीं लगा होगा। इसीलिए बलि महाराज लज्जा से अपना सिर नीचा किये थे।

स तत्र हासीनमुदीक्ष्य सत्पतिं
हरिं सुनन्दाद्यनुगैरुपासितम् ।
उपेत्य भूमौ शिरसा महामना
ननाम मूर्ध्ना पुलकाश्रुविक्लवः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

सः—प्रह्लाद महाराज ने; तत्र—वहाँ; ह आसीनम्—बैठे हुए को; उदीक्ष्य—देखकर; सत्-पतिम्—मुक्तात्माओं के स्वामी भगवान्; हरिम्—हरि को; सुनन्द-आदि-अनुगैः—सुनन्द आदि अपने अनुयायियों द्वारा; उपासितम्—पूजित; उपेत्य—पास जाकर; भूमौ—भूमि पर; शिरसा—सिर के बल (झुककर); महा-मनाः—महान् भक्त; ननाम—प्रणाम किया; मूर्ध्ना—सिर के बल; पुलक-अश्रु-विक्लवः—हर्ष के आँसुओं से विचलित।

जब प्रह्लाद महाराज ने देखा कि वहाँ पर सुनन्द जैसे अपने घनिष्ठ संगियों से घिर कर एवं पूजित होकर भगवान् बैठे हैं, तो उनकी आँखें प्रेमाश्रुओं से छलछला उठीं। उनके पास जाकर और भूमि पर गिरकर उन्होंने सिर के बल भगवान् को प्रणाम किया।

श्रीप्रह्लाद उवाच

त्वयैव दत्तं पदमैन्द्रमूर्जितं
हृतं तदेवाद्य तथैव शोभनम् ।
मन्ये महानस्य कृतो ह्यनुग्रहो
विभ्रंशितो यच्छ्रिय आत्ममोहनात् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

श्री-प्रह्लादः उवाच—प्रह्लाद महाराज ने कहा; त्वया—आपके द्वारा; एव—निस्सन्देह; दत्तम्—दिया गया; पदम्—यह स्थान; ऐन्द्रम्—इन्द्र का; ऊर्जितम्—अत्यन्त महान्; हृतम्—छीन लिया गया; तत्—वह; एव—निस्सन्देह; अद्य—आज; तथा—जिस प्रकार; एव—निस्सन्देह; शोभनम्—सुन्दर; मन्ये—मानता हूँ; महान्—महान्; अस्य—इसका (बलि महाराज का); कृतः—

आपके द्वारा की गई; हि—निस्सन्देह; अनुग्रहः—कृपा; विभ्रंशितः—से विहीन; यत्—क्योंकि; श्रियः—उस ऐश्वर्य से; आत्म-मोहनात्—जो आत्म-साक्षात्कार की प्रक्रिया को आच्छादित करने वाला था।

प्रह्लाद महाराज ने कहा : हे प्रभु! इस बलि को इन्द्र पद का महान् ऐश्वर्य आपकी ही देन है और अब उस को आपने ही छीन लिया है। मेरे विचार से आपका देना-लेना एक सा सुन्दर है। चूँकि स्वर्ग के राजा का उच्च पद उसे अज्ञान के अंधकार में डाले हुए था अतएव आपने उसका सारा ऐश्वर्य छीनकर उसके ऊपर महान् अनुग्रह किया है।

तात्पर्य : कहा गया है—*यस्याहम् अनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः* (*भागवत* १०.८८.८)। भगवान् की कृपा से ही मनुष्य को सारा भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त होता है, किन्तु यदि इस ऐश्वर्य से मनुष्य गर्वित हो उठता है और आत्म-साक्षात्कार की विधि को भूल जाता है, तो भगवान् उस ऐश्वर्य को अवश्य छीन लेते हैं। भगवान् अपने भक्त को उसका वैधानिक पद ढूँढने में सहायक बनकर अनुग्रह करते हैं। इसके लिए भगवान् भक्त की हर सहायता करने के लिए सदैव तैयार रहते हैं। लेकिन कभी-कभी भौतिक ऐश्वर्य घातक हो जाता है क्योंकि इससे मनुष्य का ध्यान इस मिथ्या प्रतिष्ठा की ओर खिंच जाता है कि मैं ही हर वस्तु का स्वामी हूँ जबकि तथ्य इसके विपरीत रहता है। भक्त को इस भ्रम से बचाने के लिए भगवान् विशेष कृपा प्रदर्शित करके कभी कभी उसका सारा धन छीन लेते हैं। *यस्याह्म अनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः।*

यया हि विद्वानपि मुह्यते यत-
स्तत्को विचष्टे गतिमात्मनो यथा ।
तस्मै नमस्ते जगदीश्वराय वै
नारायणायाखिललोकसाक्षिणे ॥ १७॥

शब्दार्थ

यया—जिस ऐश्वर्य से; हि—निस्सन्देह; विद्वान् अपि—विद्वान भी; मुह्यते—मोहित हो जाता है; यतः—आत्म-नियंत्रित; तत्—वह; कः—कौन; विचष्टे—ढूँढ सकता है; गतिम्—उन्नति; आत्मनः—अपनी; यथा—भलीभाँति; तस्मै—उसको; नमः—सादर नमस्कार करता हूँ; ते—तुमको; जगत्-ईश्वराय—ब्रह्माण्ड के स्वामी को; वै—निस्सन्देह; नारायणाय—नारायण को; अखिल-लोक-साक्षिणे—समस्त सृष्टि के साक्षी।

भौतिक ऐश्वर्य इतना मोहक है कि विद्वान तथा आत्मसंयमी व्यक्ति भी आत्म-साक्षात्कार के लक्ष्य को खोजना भूल जाता है। लेकिन भगवान् नारायण, जो ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं, अपनी इच्छानुसार प्रत्येक वस्तु को देख सकते हैं। अतएव मैं उन्हें सादर प्रणाम करता हूँ।

तात्पर्य : *को विचष्टे गतिम् आत्मनो यथा* शब्द सूचित करते हैं कि जब मनुष्य भौतिक ऐश्वर्य का

स्वामी होने की झूठी प्रतिष्ठा से फूल जाता है, तो वह आत्म-साक्षात्कार के लक्ष्य की निश्चित रूप से उपेक्षा करने लगता है। आधुनिक जगत की ऐसी ही स्थिति है। भौतिक ऐश्वर्य में तथाकथित वैज्ञानिक प्रगति के कारण लोगों ने आत्म-साक्षात्कार के मार्ग को पूरी तरह त्याग दिया है। व्यावहारिक दृष्टि से कोई भी व्यक्ति ईश्वर, ईश्वर के साथ अपने सम्बन्ध या वह किस तरह कर्म करे—इन सबके विषय में रुचि नहीं रखता। आधुनिक व्यक्तियों ने ऐसे प्रश्नों को सर्वथा भुला दिया है क्योंकि वे भौतिक सम्पत्ति के पीछे पागल हुए रहते हैं। यदि इस प्रकार की सभ्यता जारी रही तो वह समय शीघ्र ही आयेगा जब भगवान् सारा भौतिक ऐश्वर्य छीन लेंगे। तब लोगों की आँखें खुलेंगी।

श्रीशुक उवाच
तस्यानुशृण्वतो राजन्प्रह्लादस्य कृताञ्जलेः ।
हिरण्यगर्भो भगवानुवाच मधुसूदनम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; तस्य—उस; अनुशृण्वतः—जिससे वह सुन सके; राजन्—हे राजा परीक्षित; प्रह्लादस्य—प्रह्लाद महाराज का; कृत-अञ्जलेः—हाथ जोड़े खड़ा; हिरण्यगर्भः—ब्रह्माजी ने; भगवान्—सर्वशक्तिमान; उवाच—कहा; मधुसूदनम्—मधुसूदन भगवान् से।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : हे राजा परीक्षित! तब ब्रह्माजी अपने पास हाथ जोड़कर खड़े प्रह्लाद महाराज को सुनाकर भगवान् से कहने लगे।

बद्धं वीक्ष्य पतिं साध्वी तत्पत्नी भयविह्वला ।
प्राञ्जलिः प्रणतोपेन्द्रं बभाषेऽवाङ्मुखी नृप ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

बद्धम्—बन्दी किया गया; वीक्ष्य—देखकर; पतिम्—अपने पति को; साध्वी—सती स्त्री; तत्-पत्नी—बलि महाराज की पत्नी ने; भय-विह्वला—डर के मारे अत्यन्त उद्विग्न; प्राञ्जलिः—हाथ जोड़े; प्रणता—नमस्कार करके; उपेन्द्रम्—वामनदेव को; बभाषे—सम्बोधित किया; अवाक्-मुखी—सिर नीचा किये; नृप—हे महाराज परीक्षित।

लेकिन बलि महाराज की सती पत्नी अपने पति को बन्दी देखकर भयभीत तथा दुःखी थी। उसने तुरन्त भगवान् वामनदेव (उपेन्द्र) को नमस्कार किया और हाथ जोड़कर इस प्रकार बोली।

तात्पर्य : यद्यपि ब्रह्माजी बोल रहे थे, उन्हें थोड़ी देर तक रुकना पड़ा क्योंकि बलि महाराज की पत्नी विन्ध्यावलि, जो अत्यन्त क्षुब्ध एवं भयभीत थी, कुछ कहना चाह रही थी।

श्रीविन्ध्यावलिरुवाच

क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत्कृतं ते
स्वाम्यं तु तत्र कुधियोऽपर ईश कुर्युः ।
कर्तुः प्रभोस्तव किमस्यत आवहन्ति
त्यक्तह्रियस्त्वदवरोपितकर्तृवादाः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

श्री-विन्ध्यावलिः उवाच—बलि महाराज की पत्नी विन्ध्यावलि ने कहा; क्रीडा-अर्थम्—लीला के लिए; आत्मनः—अपनी; इदम्—यह; त्रि-जगत्—तीनों लोक (ब्रह्माण्ड); कृतम्—उत्पन्न किया गया; ते—आपके द्वारा; स्वाम्यम्—स्वामित्व; तु—लेकिन; तत्र—तत्पश्चात्; कुधियः—मूर्खजन; अपरे—अन्य; ईश—हे परम पालक, हे प्रभु; कुर्युः—स्थापित किया है; कर्तुः—परमस्त्रष्टा के लिए; प्रभोः—परम पालक के लिए; तव—तुम्हारे लिए; किम्—क्या; अस्यतः—परम संहारक को; आवहन्ति—अर्पित कर सकते हैं; त्यक्त-ह्रियः—निर्लज्ज, बुद्धिहीन; त्वत्—आपके द्वारा; अवरोपित—अल्पज्ञान के कारण आरोपित; कर्तृ-वादाः—ऐसे मूर्खों का स्वामित्व।

श्रीमती विन्ध्यावलि ने कहा : हे प्रभु! आपने निजी लीलाओं का आनन्द उठाने के लिए सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना की है, किन्तु मूर्ख तथा बुद्धिहीन व्यक्तियों ने भौतिक भोग के लिए उस पर अपना स्वामित्व जताया है। निस्सन्देह, वे निर्लज्ज संशयवादी हैं। वे झूठे ही स्वामित्व जताकर यह सोचते हैं कि वे उसको दान दे सकते हैं और भोग सकते हैं। ऐसी दशा में भला वे आपकी कौन सी भलाई कर सकते हैं, जो इस ब्रह्माण्ड के स्वतंत्र स्त्रष्टा, पालक तथा संहारक हैं?

तात्पर्य : बलि महाराज की पत्नी ने अत्यन्त बुद्धिमती होने के कारण अपने पति के बन्दी बनाये जाने का अनुमोदन किया और उन पर बुद्धिहीन होने का आरोप लगाया क्योंकि उन्होंने भगवान् की सम्पत्ति पर अपना स्वामित्व जताया था। ऐसा दावा आसुरी जीवन का लक्षण है। यद्यपि देवतागण, जिन्हें भगवान् ने व्यवस्था चलाने के लिए कर्मचारी नियुक्त किया है, भौतिक भोगों के प्रति आसक्त रहते हैं, किन्तु वे कभी भी ब्रह्माण्ड पर अपना स्वामित्व नहीं जताते क्योंकि उन्हें ज्ञात है कि हर वस्तु का वास्तविक स्वामी भगवान् है। देवताओं की यह योग्यता है। किन्तु असुरगण भगवान् के एकाधिकार को स्वीकार न करने के बजाये राष्ट्रीयता की हद-बन्दी के माध्यम से ब्रह्माण्ड की सम्पत्ति का दावा करते हैं। वे कहते हैं, ''यह अंश मेरा है, यह अंश तुम्हारा है। मैं इस भाग को दान में दे सकता हूँ और इस भाग को निजी भोग के लिए रख सकता हूँ।'' ये सब आसुरी धारणाएँ हैं। इसका वर्णन *भगवद्गीता* (१६.१३) में हुआ है—*इदम् अद्य मया लब्धम् इमं प्राप्स्ये मनोरथम्*—अभी तक मैंने इतना धन तथा इतनी भूमि प्राप्त की है। अब मुझे इसमें और भी वृद्धि करनी है। इस प्रकार मैं सबसे बड़ा स्वामी बन जाऊँगा। भला मेरी बराबरी कौन कर सकता है? ये सब आसुरी विचार हैं।

बलि महाराज की पत्नी ने अपने पति पर यह दोष लगाया कि यद्यपि भगवान् ने उन पर असामान्य अनुग्रह करके उन्हें बन्दी बनाया है और यद्यपि वे भगवान् के तीसरे पग के लिए अपना शरीर अर्पित कर रहे हैं, किन्तु वे फिर भी अज्ञान के अंधकार में हैं। वास्तव में वह शरीर उनका नहीं है, किन्तु दीर्घकालीन आसुरी मनोवृत्ति के कारण वे इसे समझ नहीं पाये। उन्होंने सोचा कि वे अपने दान के वचन को पूरा न कर पाने से अपयश के भागी हुए हैं और चूँकि शरीर उनका है अतएव वे अपना शरीर दान देकर इस अपयश से मुक्त हो जायेंगे। किन्तु वास्तविकता तो यह है कि शरीर किसी का न होकर भगवान् का है क्योंकि उन्हीं ने यह शरीर प्रदान किया है। जैसाकि *भगवद्गीता* (१८.६१) में कहा गया है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

भगवान् हर एक के हृदय में विराजमान हैं और वे अपनी माया शक्ति के द्वारा जीव को उसकी इच्छानुसार एक विशेष प्रकार का यंत्र अर्थात् शरीर प्रदान करते हैं। यह शरीर वास्तव में उस जीव का नहीं होता अपितु वह भगवान् का है। ऐसी दशा में बलि महाराज शरीर को अपना कैसे कह सकते थे?

इस प्रकार बलि महाराज की बुद्धिमती पत्नी विन्ध्यावलि ने प्रार्थना की कि भगवान् अपनी अहैतुकी कृपा से उनके पति को छोड़ दें। अन्यथा बलि महाराज क्या थे—एक लज्जाहीन असुर जिन्हें *त्यक्तह्रियस्त्वदवरोपितकर्तृवादाः* कहा गया है अर्थात् ऐसा मूर्ख व्यक्त जो परम पुरुष की सम्पत्ति पर अपना स्वामित्व जता रहा हो। इस कलियुग में ऐसे निर्लज्ज बुद्धिहीनों की जो भगवान् के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखते संख्या बढ़ गई है। भगवान् की सत्ता का उल्लंघन करने के प्रयास में तथाकथित विज्ञानी, दार्शनिक तथा राजनीतिज्ञ विश्व के विनाश की योजनाएँ तैयार करते रहते हैं। वे विश्व कल्याण के लिए कुछ भी नहीं कर सकते और दुर्भाग्यवश कलियुग के कारण उन्होंने विश्व के मामलों को अव्यवस्थित कर दिया है। इस तरह उन अबोध लोगों के लाभ के लिए, जो ऐसे असुरों के प्रचार द्वारा भ्रमित हो रहे हैं, कृष्णभावनामृत आन्दोलन की नितान्त आवश्यकता है। यदि वर्तमान स्थिति को इसी रूप में रहने दिया गया तो लोगों को इन असुर दुर्बुद्धियों के नायकत्व में अधिकाधिक कष्ट झेलने होंगे।

श्रीब्रह्मोवाच
भूतभावन भूतेश देवदेव जगन्मय ।
मुञ्चैनं हृतसर्वस्वं नायमर्हति निग्रहम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

श्री-ब्रह्मा उवाच—ब्रह्माजी ने कहा; भूत-भावन—हे सबके शुभेच्छु; भूत-ईश—हे सबके स्वामी; देव-देव—हे देवताओं के भी पूज्य देव; जगत्-मय—हे सर्वव्यापक; मुञ्च—कृपया छोड़ दें; एनम्—इस बेचारे बलि महाराज को; हृत-सर्वस्वम्—जिसका सर्वस्व छिन गया है; न—नहीं; अयम्—यह बेचारा; अर्हति—पात्र है; निग्रहम्—दण्ड का।

ब्रह्माजी ने कहा : हे समस्त जीवों के हितैषी एवं स्वामी, हे सभी देवताओं के पूज्य देव, हे सर्वव्यापी भगवान्! अब यह व्यक्ति पर्याप्त दण्ड पा चुका है क्योंकि आपने इसका सर्वस्व ले लिया है। अब आप इसे छोड़ दें। अब यह अधिक दण्डित होने का पात्र नहीं है।

तात्पर्य : जब ब्रह्माजी ने देखा कि प्रह्लाद महाराज तथा विन्ध्यावलि पहले ही भगवान् के पास बलि महाराज के लिए कृपायाचना करने पहुँच चुके हैं, तो वे भी उनके साथ हो लिए और सांसारिक गणनाओं के आधार पर बलि महाराज को मुक्त किये जाने की संस्तुति करने लगे।

कृत्स्ना तेऽनेन दत्ता भूर्लोकाः कर्मार्जिताश्च ये ।
निवेदितं च सर्वस्वमात्माविक्लवया धिया ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

कृत्स्नाः—सभी; ते—तुमको; अनेन—बलि महाराज द्वारा; दत्ताः—दिया जा चुका; भूः लोकाः—सारी भूमि तथा सारे लोक; कर्म-अर्जिताः च—जो कुछ उसने अपने पुण्यकर्मों से प्राप्त किया था; ये—जो; निवेदितम् च—आपको अर्पित हो चुके; सर्वस्वम्—उसके पास जो कुछ था वह सब; आत्मा—यहाँ तक कि शरीर भी; अविक्लवया—बिना हिचक के; धिया—ऐसी बुद्धि से।(०).

बलि महाराज ने आपको पहले ही अपना सर्वस्व दे दिया था। उन्होंने बिना हिचक के अपनी भूमि, अपने सारे लोक तथा अपने पुण्यकर्मों से जो कुछ अन्य भी अर्जित किया था, यहाँ तक कि अपने शरीर को भी अर्पित कर दिया है।

यत्पादयोरशठधीः सलिलं प्रदाय
दूर्वाङ्कुरैरपि विधाय सतीं सपर्याम् ।
अप्युत्तमां गतिमसौ भजते त्रिलोकीं
दाश्वानविक्लवमनाः कथमार्तिमृच्छेत् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

यत्-पादयोः—आपके चरणकमलों पर; अशठ-धीः—द्वैतरहित विशाल हृदय वाला व्यक्ति; सलिलम्—जल; प्रदाय—देकर; दूर्वा—घास; अङ्कुरैः—तथा फूल की कलियों से; अपि—यद्यपि; विधाय—अर्पित करके; सतीम्—परम पूज्य; सपर्याम्—पूजा सहित; अपि—यद्यपि; उत्तमाम्—अत्यन्त उच्च; गतिम्—लक्ष्य; असौ—ऐसा पूजक; भजते—पात्र होता है; त्रि-लोकीम्—तीनों

लोकों को; दाश्वान्—आपको देते हुए; अविक्लव-मनाः—बिना किसी मानसिक द्वैत के; कथम्—कैसे; आर्तिम्—बन्दी बनाये जाने के क्लेश का; ऋच्छेत्—भागी है।

जिनके मन में द्वैत नहीं होता वे आपके चरणों में केवल जल, दूर्वादल या अंकुर अर्पित करके वैकुण्ठ में उच्चतम स्थान प्राप्त कर सकते हैं। इन बलि महाराज ने अब बिना द्वैत के तीनों लोकों की प्रत्येक वस्तु आपको अर्पित कर दी है। तो फिर वे बन्दी होने के कष्ट के भागी कैसे हो सकते हैं?

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (९.२६) में कहा गया है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

तदहं भक्त्युपहृतम् अश्नामि प्रयतात्मनः॥

भगवान् इतने दयालु हैं कि यदि कोई निष्कपट व्यक्ति भक्तिपूर्वक एवं द्वैतरहित होकर भगवान् के चरणकमलों पर थोड़ा सा जल, फूल, फल या पत्ती चढ़ाता है, तो भगवान् उसे स्वीकार कर लेते हैं। तब वह भक्त स्वर्गलोक भेज दिया जाता है। ब्रह्माजी ने भगवान् का ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट किया और प्रार्थना की कि वे बलि महाराज को छोड़ दें क्योंकि उन्हें वरुणपाश से बन्दी होने के कारण कष्ट हो रहा था और उन्होंने पहले ही तीनों लोक तथा अपना सर्वस्व उन्हें भेंट कर दिया था।

श्रीभगवानुवाच
ब्रह्मन्यमनुगृह्णामि तद्विशो विधुनोम्यहम्।
यन्मदः पुरुषः स्तब्धो लोकं मां चावमन्यते॥ २४॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; ब्रह्मन्—हे ब्रह्माजी; यम्—जिस पर; अनुगृह्णामि—मैं दया करता हूँ; तत्—उसका; विशः—ऐश्वर्य; विधुनोमि—छीन लेता हूँ; अहम्—मैं; यत्-मदः—इस धन के कारण झूठी प्रतिष्ठा होने से; पुरुषः—ऐसा व्यक्ति; स्तब्धः—कुंद बुद्धि होकर; लोकम्—तीनों लोक; माम् च—मेरी भी; अवमन्यते—अवहेलना करता।

भगवान् ने कहा : हे ब्रह्माजी! भौतिक ऐश्वर्य के कारण मूर्ख व्यक्ति मन्दबुद्धि एवं पागल हो जाता है। इस तरह तीनों लोकों में वह किसी का सम्मान नहीं करता और मेरी सत्ता की भी अवहेलना करता है। सर्वप्रथम ऐसे व्यक्ति की सारी सम्पत्ति छीनकर मैं उस पर विशेष अनुग्रह प्रदर्शित करता हूँ।

तात्पर्य : जो सभ्यता भौतिक ऐश्वर्य में उन्नति के कारण ईश्वरविहीन हो गई है, वह अत्यन्त घातक होती है। ऐश्वर्य के कारण भौतिकतावादी इतना घमंडी हो जाता है कि वह किसी का सम्मान नहीं

करता और भगवान् की भी सत्ता को नकारता है। ऐसी मनोवृत्ति का परिणाम निश्चित रूप से अत्यन्त घातक होता है। विशेष अनुग्रह दिखलाने के लिए भगवान् कभी-कभी बलि महाराज जैसे व्यक्ति एक उदाहरण बनाते हैं।

यदा कदाचिज्जीवात्मा संसरन्निजकर्मभिः ।
नानायोनिष्वनीशोऽयं पौरुषीं गतिमाव्रजेत् ॥ २५॥

शब्दार्थ

यदा—जब; कदाचित्—कभी-कभी; जीव-आत्मा—जीव; संसरन्—जन्म तथा मृत्यु के चक्र में घूमते हुए; निज-कर्मभिः—अपने कर्मों के कारण; नाना-योनिषु—अनेक योनियों में; अनीशः—पराश्रित (माया के वश में); अयम्—यह जीव; पौरुषीम् गतिम्—मनुष्य का पद; आव्रजेत्—प्राप्त करना चाहता है।

अपने ही सकाम कर्मों के कारण विभिन्न योनियों में जन्म-मरण के चक्र में बारम्बार घूमते हुए परतंत्र जीव भाग्यवश मनुष्य का शरीर प्राप्त कर सकता है। यह मनुष्य-जन्म विरले ही प्राप्त हो पाता है।

तात्पर्य : भगवान् पूर्ण स्वतंत्र हैं। इस प्रकार यह सदा सच नहीं होता कि किसी जीव के सारे ऐश्वर्य की हानि उस पर भगवत्कृपा की सूचक हो। भगवान् जैसा भी चाहें कर सकते हैं। वे किसी का ऐश्वर्य छीन सकते हैं या नहीं भी छीनते। जीव की अनेक योनियाँ हैं और भगवान् परिस्थितियों को ध्यान में रखकर उनके साथ इच्छानुसार व्यवहार करते हैं। सामान्यत: यह समझा जाता है कि मनुष्य योनि सबसे अधिक दायित्वपूर्ण है।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥

''भौतिक प्रकृति में जीव तीनों गुणों का भोग करता हुआ जीवन बिताता है। यह भौतिक प्रकृति के साथ उसकी संगति का फल है। इस तरह विविध योनियों में उसे अच्छी और बुरी परिस्थितियाँ मिलती रहती हैं'' (*भगवद्गीता* १३.२२)। इस प्रकार अनेकानेक योनियों में घूमता हुआ जीव मनुष्य-जीवन का अवसर प्राप्त करता है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को, विशेष रूप से सभ्य राष्ट्र या संस्कृति वाले मनुष्य को अपने कार्यों में अत्यधिक उत्तरदायी रहना चाहिए। उसे अगले जीवन में स्वयं को संकट में नहीं डालना चाहिए। चूँकि शरीर बदल जायेगा (*तथा देहान्तर प्राप्तिः*) अतएव हमें अत्यधिक सतर्क रहना चाहिए। कृष्णभावनामृत का उद्देश्य यह देखना है कि जीवन का सही उपयोग हो। मूर्ख

जीव अपने को सभी प्रकार के नियंत्रण से मुक्त घोषित करता है, जबकि वास्तव में वह मुक्त नहीं रहता। वह पूरी तरह प्रकृति के नियंत्रण में रहता है। अतएव उसे अपने जीवन के कार्यों में अत्यन्त सावधान एवं उत्तरदायी होना चाहिए।

जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभिः ।
यद्यस्य न भवेत्स्तम्भस्तत्रायं मदनुग्रहः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

जन्म—कुलीन परिवार में जन्म लेकर; कर्म—अद्भुत कर्मों या पुण्य कर्मों के द्वारा; वयः—आयु से, विशेषतया युवावस्था में जब मनुष्य अनेक कार्य कर सकता है; रूप—निजी सौन्दर्य से, जिससे सभी आकृष्ट होते हैं; विद्या—विद्या से; ऐश्वर्य—ऐश्वर्य से; धन—धन; आदिभिः—इत्यादि से; यदि—यदि; अस्य—स्वामी का; न—नहीं; भवेत्—है; स्तम्भः—घमंड; तत्र—ऐसी अवस्था में; अयम्—व्यक्ति; मत्-अनुग्रहः—समझो कि उसे मेरी विशेष कृपा प्राप्त हो गई है।

यदि कोई मनुष्य उच्चकुल में जन्मा हो, यदि वह अद्भुत कर्म करे, यदि वह तरुण हो, यदि उसके पास सौन्दर्य, उत्तम शिक्षा तथा प्रचुर सम्पत्ति हो और यदि वह इतने पर भी अपने ऐश्वर्य पर न इतराये तो यह समझना चाहिए कि उस पर भगवान् की विशेष कृपा है।

तात्पर्य : यदि इन सब ऐश्वर्यों के होते हुए भी कोई मनुष्य घमंडी नहीं होता तो यह समझना चाहिए कि वह भली भाँति यह जानता है कि उसका सारा ऐश्वर्य भगवान् की कृपा के फलस्वरूप है। अतएव वह अपनी सारी सम्पत्ति भगवान् की सेवा में लगा देता है। भक्त भलीभाँति जानता है कि उसका सर्वस्व—यहाँ तक कि उसका शरीर भी—भगवान् का है। यदि कोई पूर्णतः ऐसे कृष्णभावनामृत में रहता है, तो यह समझना चाहिए कि उस पर भगवान् की विशेष कृपा है। निष्कर्ष यह निकला कि धन से वञ्चित होने को भगवान् की विशेष कृपा नहीं मानना चाहिए। प्रत्युत यदि कोई अपने ऐश्वर्यपूर्ण पद पर निरन्तर बना रहता है, और व्यर्थ ही यह घमंड नहीं करता और यह नहीं सोचता कि वह हर वस्तु का स्वामी है, तो यह भगवान् की विशेष कृपा है।

मानस्तम्भनिमित्तानां जन्मादीनां समन्ततः ।
सर्वश्रेयःप्रतीपानां हन्त मुह्येन्न मत्परः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

मान—झूठी प्रतिष्ठा का; स्तम्भ—इस धृष्टता के कारण; निमित्तानाम्—कारणों का; जन्म-आदीनाम्—उच्चकुल में जन्म इत्यादि; समन्ततः—सब मिलाकर; सर्व-श्रेयः—जीवन के परम लाभ के लिए; प्रतीपानाम्—बाधाओं का; हन्त—भी; मुह्येत्—मोहग्रस्त हो जाता है; न—नहीं; मत्-परः—मेरा अनन्य भक्त।

यद्यपि उच्चकुल में जन्म एवं ऐसे अन्य ऐश्वर्य भक्ति की उन्नति में बाधक होते हैं क्योंकि ये

झूठी प्रतिष्ठा तथा घमंड के कारण हैं, किन्तु ये ऐश्वर्य भगवान् के अनन्य भक्त को कभी विचलित नहीं करते।

तात्पर्य : ध्रुव महाराज जैसे भक्तों पर जिन्हें असीम भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त था, भगवान् की विशेष कृपा होती है। एक बार कुवेर ने ध्रुव महाराज को एक वर देना चाहा, किन्तु ध्रुव ने उनसे यही याचना की कि मैं भगवान् की भक्ति करता रहूँ यद्यपि वे चाहते तो उनसे कितना ही भौतिक ऐश्वर्य माँग सकते थे। जब भक्त भगवान् ऐश्वर्य की भक्ति में स्थिर होता है, तो भगवान् को उसे उसके भौतिक ऐश्वर्य से वंचित करने की आवश्यकता नहीं रहती। भगवान् भक्ति के कारण अर्जित धन को कभी नहीं छीनते यद्यपि वे कभी-कभी पुण्य कर्मों के द्वारा अर्जित धन को हर लेते हैं। वे ऐसे भक्त को घमण्ड-रहित करने के लिए या उसे भक्ति के बेहतर पद पर स्थित करने के लिए करते हैं। यदि किसी विशेष भक्त का कार्य प्रचार करना हो, किन्तु यदि वह अपने पारिवारिक जीवन या ऐश्वर्य को त्यागकर भगवत्सेवा नहीं करता तो भगवान् निश्चित रूप से उसका भौतिक ऐश्वर्य छीन लेते हैं और उसे भक्ति में स्थापित कर देते हैं। इस तरह शुद्ध भक्त कृष्णभावनामृत के पूर्ण प्रचार कार्य में लग जाता है।

एष दानवदैत्यानामग्रनीः कीर्तिवर्धनः ।
अजैषीदजयां मायां सीदन्नपि न मुह्यति ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

एषः—यह बलि महाराज; दानव-दैत्यानाम्—असुरों तथा नास्तिकों में; अग्रनीः—अग्रगण्य भक्त; कीर्ति-वर्धनः—अत्यन्त विख्यात; अजैषीत्—पहले ही बाजी मार चुका है; अजयाम्—अजेय; मायाम्—माया को; सीदन्—(सारे ऐश्वर्य से) विहीन होकर; अपि—यद्यपि; न—नहीं; मुह्यति—मोहग्रस्त होता है।.

बलि महाराज असुरों एवं नास्तिकों में सर्वाधिक विख्यात हो गये हैं क्योंकि अपने सारे ऐश्वर्य से वंचित होकर भी वे अपनी भक्ति में अचल हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में *सीदन्नपि न मुह्यति* पद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कभी-कभी भक्ति करते हुए भक्त संकट में फँस जाता है। संकट में हर व्यक्ति शोक करता है और दुखी होता है, किन्तु भक्त भगवत्कृपा से बुरी से बुरी स्थिति में भी यह समझ सकता है कि भगवान् उसकी कठिन परीक्षा ले रहे हैं। बलि महाराज ऐसी सारी परीक्षाओं में उत्तीर्ण रहे जैसाकि अगले श्लोकों से प्रकट है।

क्षीणरिक्थश्च्युतः स्थानात्क्षिप्तो बद्धश्च शत्रुभिः ।

ज्ञातिभिश्च परित्यक्तो यातनामनुयापितः ॥ २९ ॥
गुरुणा भर्त्सितः शप्तो जहौ सत्यं न सुव्रतः ।
छलैरुक्तो मया धर्मो नायं त्यजति सत्यवाक् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

क्षीण-रिक्थः—समस्त प्रकार के धनधान्य से विहीन; च्युतः—गिरा हुआ; स्थानात्—अपने श्रेष्ठ स्थान से; क्षिप्तः—बलपूर्वक फेंका गया; बद्धः च—तथा जबरदस्ती बाँधा गया; शत्रुभिः—अपने शत्रुओं द्वारा; ज्ञातिभिः च—तथा अपने कुटुम्बियों द्वारा; परित्यक्तः—त्यागा गया; यातनाम्—सभी प्रकार के कष्ट; अनुयापितः—असामान्य रूप से गहन दुख भोगा हुआ; गुरुणा—अपने गुरु द्वारा; भर्त्सितः—भर्त्सना किया गया; शप्तः—तथा शापित; जहौ—छोड़ दिया; सत्यम्—सत्य को; न—नहीं; सु-व्रतः—अपने व्रत में अटल; छलैः—छल द्वारा; उक्तः—कहा गया; मया—मेरे द्वारा; धर्मः—धर्म; न—नहीं; अयम्—यह बलि महाराज; त्यजति—त्याग देता है; सत्य-वाक्—अपने वचन का पक्का।

बलि महाराज यद्यपि धनविहीन, अपने मौलिक पद से च्युत, अपने शत्रुओं द्वारा पराजित तथा बन्दी बनाये गये, अपने कुटुम्बियों तथा मित्रों द्वारा भर्त्सित हुए और परित्यक्त, बाँधे जाने की पीड़ा से पीड़ित तथा अपने गुरु द्वारा भर्त्सित तथा शापित थे, किन्तु वे अपने व्रत में अटल रहे। उन्होंने अपना सत्य नहीं छोड़ा। मैंने तो निश्चित रूप से छल से धर्म के विषय में बातें कहीं, किन्तु उन्होंने अपना धर्म नहीं छोड़ा क्योंकि वे अपने वचन के पक्के हैं।

तात्पर्य : बलि महाराज ने भगवान् द्वारा ली गई कठिन परीक्षा उत्तीर्ण की। यह भगवान् द्वारा अपने भक्त पर कृपा का अन्य प्रमाण है। कभी-कभी भगवान् भक्त की इतनी कठिन परीक्षाएँ लेते हैं, जो लगभग असह्य होती हैं। बलि महाराज को जिस स्थिति में पहुँचा दिया गया था उसमें किसी के लिए भी जीवित रह पाना कठिन था। किन्तु बलि महाराज ने इन कठिन परीक्षाओं तथा तपस्याओं को सह लिया तो यह भगवान् की कृपा ही है। भगवान् निश्चय ही भक्त की सहनशीलता को सराहते हैं और भक्त के भावी महिमागान के लिए इसे अंकित कर लिया जाता है। यह कोई सरल परीक्षा न थी। जैसाकि इस श्लोक में वर्णन हुआ है, शायद ही कोई ऐसी परीक्षा में सफल हो सके, किन्तु महाजनों में से एक बलि महाराज के भावी महिमागान के लिए भगवान् ने न केवल उनकी परीक्षा ली अपितु ऐसी विपदा सहने के लिए उन्हें शक्ति भी प्रदान की। भगवान् अपने भक्त पर इतने दयालु हैं कि उस की कठिन परीक्षा लेते समय वे उसे आवश्यक शक्ति प्रदान करते हैं जिससे वह उसे सह सके और यशस्वी भक्त बना रह सके।

एष मे प्रापितः स्थानं दुष्प्रापममरैरपि ।
सावर्णेरन्तरस्यायं भवितेन्द्रो मदाश्रयः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

एषः—बलि महाराज; मे—मेरे द्वारा; प्रापितः—प्राप्त किया है; स्थानम्—स्थान; दुष्प्रापम्—प्राप्त करने में अत्यन्त कठिन; अमरैः अपि—यहाँ तक कि देवताओं के द्वारा भी; सावर्णेः अन्तरस्य—सावर्णि मनु के काल में; अयम्—यह बलि महाराज; भविता—होगा; इन्द्रः—स्वर्ग का स्वामी; मत्-आश्रयः—पूर्णतः मेरे संरक्षण में।

भगवान् ने आगे कहा : उसकी महान् सहनशक्ति के कारण मैंने उसे वह स्थान प्रदान किया है, जो देवताओं को भी सुलभ नहीं हो पाता। वह सावर्णि मनु के काल में स्वर्ग का राजा बनेगा।

तात्पर्य : यह भगवान् की कृपा है। यहाँ तक कि जब भगवान् भक्त के ऐश्वर्य को भी छीनते हैं, तो वे उसे तुरन्त ऐसा स्थान प्रदान करते हैं, जो देवताओं को स्वप्न में भी सुलभ नहीं हो सकता। भक्ति के इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। ऐसा एक उदाहरण सुदामा विप्र का ऐश्वर्य है। सुदामा विप्र को भौतिक सम्पत्ति की सख्त तंगी थी, किन्तु वह विचलित नहीं हुआ और भक्ति के पथ से हटा नहीं। अन्त में भगवान् कृष्ण ने कृपा करके उसे उच्च स्थान प्रदान किया। यहाँ पर *मदाश्रयः* शब्द अत्यन्त सार्थक है। चूँकि भगवान् बलि महाराज को इन्द्र का उच्च पद देना चाहते थे अतएव स्वभावतः सारे देवता उनसे ईर्ष्यालु हो जाते और उन्हें उस पद से विचलित करने के लिए लड़ाई करते। किन्तु भगवान् ने बलि महाराज को आश्वासन दिया कि वे उनके आश्रय में (*मदाश्रयः*) रहेंगे।

तावत्सुतलमध्यास्तां विश्वकर्मविनिर्मितम् ।
यदाधयो व्याधयश्च क्लमस्तन्द्रा पराभवः ।
नोपसर्गा निवसतां सम्भवन्ति ममेक्षया ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

तावत्—जब तक तुम इन्द्र के पद पर नहीं हो; सुतलम्—सुतल नामक लोक; अध्यास्ताम्—वहाँ जाकर उस स्थान पर अधिकार जमाओ; विश्वकर्म-विनिर्मितम्—विश्वकर्मा द्वारा विशेष रूप से निर्मित; यत्—जिसमें; आधयः—मानसिक क्लेश; व्याधयः—शरीर सम्बन्धी कष्ट; च—भी; क्लमः—थकान; तन्द्रा—आलस्य; पराभवः—पराजित होकर; न—नहीं; उपसर्गाः—अन्य उपद्रवों के लक्षण; निवसताम्—वहाँ रहने वालों का; सम्भवन्ति—सम्भव होते हैं; मम—मेरी; ईक्षया—विशेष निगरानी से।

जब तक बलि महाराज स्वर्ग के राजा (इन्द्र) का पद प्राप्त नहीं कर लेते तब तक वे सुतललोक में रहेंगे जिसे विश्वकर्मा ने मेरे आदेश से निर्मित किया था। चूँकि इसकी रक्षा मेरे द्वारा विशेष रूप से होती है अतएव यह मानसिक तथा शारीरिक व्याधियों, थकान, आलस्य, पराजय तथा अन्य सभी उपद्रवों से मुक्त है। हे बलि महाराज! अब तुम वहाँ जाकर शान्तिपूर्वक रह सकते हो।

तात्पर्य : विश्वकर्मा स्वर्गलोक के उच्च प्रासादों के इंजीनियर या शिल्पी हैं। चूँकि इन्हें बलि

महाराज का आवास बनाने के लिए लगाया गया था अतएव सुतललोक के महल कम से कम स्वर्गलोक जैसे अवश्य होने चाहिए थें। बलि महाराज के लिए तैयार कराये गये इस स्थान का एक अन्य लाभ यह था कि उन्हें वहाँ न तो किसी बाहरी आपत्ति से विचलित होना पड़ेगा, न ही उन्हें कोई मानसिक या शारीरिक क्लेश सतायेगा। सुतललोक के ये अद्वितीय लक्षण हैं जहाँ बलि महाराज रहेंगे।

वैदिक ग्रंथों में हमें अनेक विभिन्न लोकों के वर्णन मिलते हैं जहाँ अनेकानेक प्रासाद हैं, जो धरालोक की तुलना में हजारों गुना श्रेष्ठ हैं। जब हम प्रासादों की बात करते हैं, तो स्वभावत: उसमें बड़े-बड़े शहरों तथा नगरों का भाव निहित होता है। दुर्भाग्यवश जब आधुनिक विज्ञानी अन्य लोकों की खोज करने का प्रयास करते हैं, तो उन्हें चट्टानों तथा बालू के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता। भले ही वे अपनी तुच्छ यात्राओं का आयोजन करते रहें, किन्तु वैदिक साहित्य का अध्येता न तो कभी उन पर विश्वास करेगा न उन्हें अन्य लोकों की खोज का श्रेय प्रदान करेगा।

इन्द्रसेन महाराज याहि भो भद्रमस्तु ते ।
सुतलं स्वर्गिभि: प्रार्थ्यं ज्ञातिभि: परिवारित: ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

इन्द्रसेन—हे महाराज बलि; महाराज—हे राजा; याहि—जाओ; भो:—हे राजा; भद्रम्—कल्याण; अस्तु—हो; ते—तुम्हारा; सुतलम्—सुतललोक में; स्वर्गिभि:—देवताओं द्वारा; प्रार्थ्यम्—वांछित; ज्ञातिभि:—आपके कुटुम्बियों द्वारा; परिवारित:—घिरे हुए।

हे बलि महाराज (इन्द्रसेन)! तुम उस सुतललोक में जाओ जिसकी कामना देवता भी करते हैं। वहाँ अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों की संगति में शान्तिपूर्वक रहो। तुम्हारा कल्याण हो।

तात्पर्य : जैसाकि *स्वर्गिभि: प्रार्थ्यम्* शब्दों से सूचित होता है सुतललोक स्वर्गलोक से सैकड़ों गुना अच्छा है जहाँ बलि महाराज को स्वर्ग लोक से स्थानान्तरित किया गया। जब भगवान् अपने भक्त को भौतिक ऐश्वर्य से विहीन करते हैं, तो इसका अर्थ यह नहीं होता कि वे उसे दरिद्र बना देते हैं; प्रत्युत वे उसे उच्चतर पद प्रदान करते हैं। भगवान् ने बलि महाराज को अपने कुटुम्ब से विलग होने के लिए नहीं कहा अपितु उन्हें अपने कुटुम्बियों के साथ ठहरने की अनुमति प्रदान की (*ज्ञातिभि: परिवारित:*)।

न त्वामभिभविष्यन्ति लोकेशा: किमुतापरे ।
त्वच्छासनातिगान्दैत्यांश्चक्रं मे सूदयिष्यति ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; त्वाम्—तुमको; अभिभविष्यन्ति—जीत सकेंगे; लोक-ईशाः—विभिन्न लोकों के प्रधान देवता; किम् उत अपरे—सामान्य लोगों के विषय में क्या कहा जाये; त्वत्-शासन-अतिगान्—जो तुम्हारे आदेशों का उल्लंघन करते हैं; दैत्यान्—ऐसे दैत्यों को; चक्रम्—चक्र; मे—मेरा; सूदयिष्यति—मार डालेगा।

सुतललोक में, सामान्य लोग तो क्या, अन्य लोकों के प्रधान देवता भी तुम्हें नहीं जीत पायेंगे। रही असुरों की बात, यदि वे तुम्हारे शासन का उल्लंघन करेंगे तो मेरा चक्र उनका वध कर देगा।

रक्षिष्ये सर्वतोऽहं त्वां सानुगं सपरिच्छदम् ।
सदा सन्निहितं वीर तत्र मां द्रक्ष्यते भवान् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

रक्षिष्ये—रक्षा करूँगा; सर्वतः—सभी प्रकार से; अहम्—मैं; त्वाम्—तुम्हारी; स-अनुगम्—तुम्हारे संगियों सहित; स-परिच्छदम्—साज-सामान सहित; सदा—सदैव; सन्निहितम्—पास ही रहकर; वीर—हे शूरवीर; तत्र—वहाँ, अपने स्थान में; माम्—मुझको; द्रक्ष्यते—देख सकोगे; भवान्—तुम।

हे शूरवीर! मैं सदैव तुम्हारे साथ रहूँगा और तुम्हारे संगियों तथा साज-सामग्री समेत तुम्हें सभी प्रकार से संरक्षण प्रदान करूँगा। साथ ही, तुम वहाँ मुझे सदैव देख सकोगे।

तत्र दानवदैत्यानां सङ्गात्ते भाव आसुरः ।
दृष्ट्वा मदनुभावं वै सद्यः कुण्ठो विनङ्क्ष्यति ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

तत्र—उस स्थान में; दानव-दैत्यानाम्—असुरों तथा दानवों की; सङ्गात्—संगति से; ते—तुम्हारी; भावः—मनोवृत्ति; आसुरः—आसुरी; दृष्ट्वा—देखकर; मत्-अनुभावम्—मेरी सर्वश्रेष्ठ शक्ति; वै—निस्सन्देह; सद्यः—तुरन्त; कुण्ठः—चिन्ता; विनङ्क्ष्यति—नष्ट हो जायेगी।

चूँकि तुम्हें वहाँ मेरे परम पराक्रम का दर्शन होगा अतएव असुरों तथा दानवों की संगति से तुममें जो भौतिकतावादी विचार एवं चिन्ताएँ उदित हुई हैं, वे तुरन्त ही विनष्ट हो जायेंगी।

तात्पर्य : भगवान् ने बलि महाराज को सभी प्रकार की सुरक्षा के लिए आश्वस्त किया और अन्त में यह भी आश्वासन दिया कि असुरों की कुसंगति के प्रभावों से उनकी रक्षा करेंगे। बलि महाराज निश्चय ही महान् भक्त बन गये, किन्तु उन्हें कुछ चिन्ता थी कि उनकी संगति शुद्ध भक्तिमयी नहीं है। इसलिए भगवान् ने उन्हें आश्वस्त किया कि उनकी आसुरी मनोवृत्ति नष्ट हो जायेगी। दूसरे शब्दों में, भक्तों की संगति से आसुरी मनोवृत्ति जाती रहती है—

सतां प्रसङ्गान् मम वीर्यसंविदो

भवन्ति हृत्कर्णरसायना: कथा:

(*भागवत* ३.२५.२५)

जब कोई असुर भगवान् की महिमा का गायन करने वाले भक्तों की संगति करता है, तो वह क्रमश: शुद्ध भक्त बन जाता है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कन्ध के अन्तर्गत ''बलि महाराज द्वारा आत्मसमर्पण'' नामक बाईसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।